प्रसून जयंती अंक

मूल्य : 25 रुपये

वर्ष : 2, अंक : 7, जुलाई–सितंबर, 2010

पारस-पखान

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की प्रतिनिधि एवं संग्रहणीय अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिकी

पारस-बेला व्यास

वरिष्ठ साहित्यकारों के साथ पं. पारसनाथ पाठक 'प्रसून', बाएं से दूसरे खड़े हुए

वर्ष–2, अंक–7, जुलाई–सितंबर, 2010

मूल्य : 25 रुपये

अनुक्रमणिका

पारस-पखान

(हिंदी काव्य की समस्त विधाओं की प्रतिनिधि एवं संग्रहणीय अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिकी)

संपादकीय 2

पाठकों की पाती 3

श्रद्धा-सुमन

मेरे बाबू जी — *ई. अरुण कुमार पाठक* 4

कालजयी काव्य पुरुष... — शिवकुमार 'बिलग्रामी' 6

बाबू जी मेरे आएंगे... — *डॉ. अनिल कुमार पाठक* 8

कालजयी

भारतीय जवानों के प्रति — *पं. पारसनाथ पाठक 'प्रसून'* 9

आर्काइव से 10

तोड़ती पत्थर — *सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'* 11

सब कुछ कह लेने के बाद — *सर्वेश्वर दयाल सक्सेना* 12

दुनिया — *रघुवीर सहाय* 13

साबरमती के संत — *प्रदीप* 14

जीवन में अरमानों का — *बलबीर सिंह 'रंग'* 16

काँटे मत बोओ — *रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'* 17

समय के सारथी

ज़िन्दगी — *कन्हैयालाल नन्दन* 18

छिप छिप अश्रु बहाने वालों — *गोपाल दास 'नीरज'* 20

देखी ऐसी भी बरसात — *शशिकांत यादव 'शशि'* 22

कूड़ा बीनते बच्चे — *अनामिका* 23

आदमी के साथ — *लक्ष्मीशंकर वाजपेयी* 24

हे देवनागरी! — *राजेश पंकज* 25

छुअन पुष्पगंधा बन जाए — *डॉ. अशोक मधुप* 26

फूलों का दर्द — *शरद तैलंग* 28

रेत पर नाम — *डॉ. विष्णु सक्सेना* 29

उस क्षण मेरा प्यार जगाना — *रमाशंकर शुक्ल 'हृदय'* 30

प्रवासी के बोल

अपने को मिटाना सीखो — *प्रो. सुरेश ऋतुपर्ण* 31

घर पहुँचने का रास्ता — *प्राण शर्मा* 33

बारिश — *अमरेन्द्र नारायण* 34

आस्था का उजाला — *पुष्पिता* 35

कौन कहता है — *चाँद हदियाबादी* 37

नारी-स्वर

जिंदगी अहसास का नाम है — *डॉ. अंजना संधीर* 38

नवांकुर

खुशी — *शलभ श्रीवास्तव* 40

संपादक

डॉ. सुनील जोगी

आपके सुझावों और रचनाओं का स्वागत है–

kavi**sunil**jogi@gmail.com

संरक्षक

डॉ. एल.पी. पाण्डेय;
श्री अभिमन्यु कुमार पाठक;
श्री अरुण कुमार पाठक;
श्री राजेश प्रकाश;
डॉ. अनिल कुमार;
डॉ. अशोक मधुप।

लेआउट एवं टाइपसेटिंग :

इंडिका इन्फोमीडिया, जनकपुरी, नई दिल्ली –110058

मूल्य : 25 रुपए

वार्षिक : 100 रुपए

पंचवार्षिक : 450 रुपए

आजीवन : 5,000 रुपए

विदेशों में : $ 5

(एक अंक)

प्रवासी संपादकीय सलाहकार

डॉ. सुरेशचन्द्र शुक्ल (नार्वे)

श्री ब्रह्म शर्मा (सिंगापुर)

श्री सी. एम. सरदार (मस्कट)

संपादकीय कार्यालय

आर-101 ए, गीता अपार्टमेन्ट

खिड़की एक्सटेन्शन,

मालवीय नगर

नयी दिल्ली –110017

दूरभाष –98110-05255

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक **प्रसून प्रतिष्ठान** के लिए **डॉ. अनिल कुमार** द्वारा अभिषेक प्रिंटर्स, सी, 136, फेज 1, नारायणा, इंडस्ट्रियल एरिया, नयी दिल्ली में मुद्रित एवं सी-49, बटलर पैलेस कॉलोनी, जॉपलिंग रोड, लखनऊ से प्रकाशित। संपादक –**डॉ. सुनील जोगी**।

'पारस-पखान' में प्रकाशित रचनाओं के रचयिताओं के विचार अपने हैं। विवादास्पद मामले लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

संपादकीय

1920 ई. में जब कमाल पाशा के हाथ में तुर्की के शासन की बागडोर आई तो उसने राज्य के उच्चाधिकारियों, शिक्षाशास्त्रियों को बुलाकर पूछा–"तुर्की भाषा के माध्यम से राजकाज चलाने में कितने वर्ष लगेंगे?" उत्तर मिला–"कम से कम 10 वर्ष!" कमाल पाशा ने कहा–"समझ लें कि 10 वर्ष अगले दिन 10 बजे समाप्त हो रहे हैं। कल प्रातः 10 बजे से सारा कामकाज तुर्की भाषा में ही होगा!" कहना न होगा अगले दिन सुबह 10 बजे से तुर्की देश की राजभाषा हो गई। इसके ठीक उलट, हमारे देश में 14 सितंबर, 1949 को हिंदी को भारत संघ की राजभाषा स्वीकार किया गया और 26 जनवरी, 1950 से हिंदी, देश का संविधान लागू होने के बाद, औपचारिक रूप से राजभाषा बन गई। लेकिन संविधान लागू होने के पश्चात जो भाषा देश की राजभाषा बनी उसके लिए अधिनियम 1963 में बने, यानी 13 वर्ष बाद, और नियम 1976 में, यानी 26 वर्ष बाद।

ये दो दृष्टांत दो देशों के हैं। एक में तेवर है, त्वरा है; दूसरे में अक्षम्य ढिलाई और लापरवाही है। पहला दृष्टांत उस देश का है जो 'एशिया का बीमार' कहा जाता था और दूसरा दृष्टांत उस देश का है जिसके बारे में कहा जाता है कि सभ्यता ने अपनी आँखें यहीं खोली थीं। क्या व्यंग्य है!

कहा जाता है कि जिस देश की अपनी कोई भाषा नहीं होती उस देश का कोई चेहरा भी नहीं होता। इस विडंबना पर क्या कहा जाए कि हिंदुस्तान आज भी एक चेहराविहीन देश बना हुआ है। हम आजादी के 63 साल बाद भी अपने चेहरे की तलाश कर रहे हैं। या फिर, जो चेहरा है उसे हम स्वयं ही नहीं पहचान रहे हैं। जब हम स्वयं को ही नहीं पहचानेंगे तो दुनिया हमें कैसे और क्योंकर पहचानेगी?

आज हमें निज भाषा को लेकर सोचना चाहिए। यह विचारना चाहिए कि हिंदी आज भी पूरे देश की भाषा क्यों नहीं बन पाई? क्यों हिंदी को (क, ख और ग जैसे) तीन क्षेत्रों में बाँटा गया है? क्यों हिंदी को केवल 'राजभाषा' माना जाता है, राष्ट्रभाषा नहीं? 14 सितंबर को 'हिंदी दिवस' मनाने की औपचारिकता अब भी क्या जरूरी है? क्या ऐसा करके हम हिंदी का और अहित ही नहीं कर रहे हैं?

दरअसल, हिंदी का अहित यूँ हुआ कि बाड़ ही खेत को खाने लगा। आप याद करें, जब जॉर्ज बुश अमरीका के राष्ट्रपति थे तो अपने देशवासियों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था कि यदि आप अपनी नौकरी, अपना रोजगार बचाना चाहते हैं तो हिंदी सीखें। अहिंदी भाषी चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, रवींद्रनाथ टैगोर, पट्टाभि सीतारमैया आदि जैसे मनीषियों ने हमेशा हिंदी के पक्ष में नारा बुलंद किया था। पट्टाभि सीतारमैया तो अपने पत्रों में पता हमेशा हिंदी में ही लिखा करते थे। मजबूर होकर मछलीपट्टनम के डाकघर में हिंदी जानने वाले आदमी को रखना पड़ा था।

लब्बोलुआब यह कि निज भाषा का सम्मान हमें स्वयं करना सीखना होगा। हिंदुस्तान एक बहुभाषी देश है किंतु हिंदी बहुसंख्या द्वारा उपयोग किए जाने के कारण स्वाभाविक रूप से राष्ट्रभाषा है। किसी नदी की सहायक धाराओं की तरह देश की अन्य भाषाओं को देखा जा सकता है; न कोई विरोध, न कोई विभ्रम। बात साफ है।

पं. पारसनाथ पाठक 'प्रसून' के जयंती के अवसर पर यह सातवाँ अंक अपने पाठकों को सौंपते हुए हमें हर्ष हो रहा है। हर वर्ष की भाँति इस वर्ष भी 'समय के सारथी' कवि-वर्ग में 'पारस शिखर सम्मान' व 'नवांकुर' कवि-वर्ग में 'पारस स्वर बेला सम्मान' प्रदान किया जा रहा है जिनके लिए क्रमशः वर्तमान समय में सर्वाधिक लोकप्रिय कवि पद्म भूषण *गोपाल दास 'नीरज'* व भारतीय समाज में राष्ट्रवादी विचारधारा को जाग्रत करने वाले *शशिकांत यादव 'शशि'* का चयन किया गया है। आपको **पारस-पाखन** परिवार की ओर से बधाई!

–डॉ. सुनील जोगी
(संपादक)
मोबा. : 09811005255
ई-मेल : kavi**sunil**jogi@gmail.com

महोदय,
हाल ही में अपनी एक मित्र के यहां से 'पारस पखान' का अंक पढ़ने के लिए ले आयी। मुझे इस बात की सुखद अनुभूति हुई कि आप इसमें नये कवियों की रचनाओं के साथ-साथ पुरानी साहित्यिक हस्तियों की रचनाओं को भी प्रकाशित करते हैं। अच्छी पुरानी कविताओं को प्रकाशित कर आप नयी पीढ़ी पर बहुत बड़ा उपकार कर रहे हैं। आप इसके लिए साधुवाद के पात्र हैं!

पूनम तिवारी, तुलसीपुरम, लखनऊ

महोदय,
आपने 'पारस-पखान' पत्रिका को दूसरी साहित्यिक पत्रिकाओं से अलग पहचान दी है। आपने इसमें काव्य की विभिन्न विधाओं को स्थान दिया है। नई कविता, पुरानी कविता, गीत, गज़ल, हास्य रचनाओं आदि को प्रकाशित कर आपने इस पत्रिका को अधिक सुरुचिपूर्ण बनाया है। इसके लिए आपका धन्यवाद!

अश्विनी कुमार, 110, भगवती नगर, जयपुर, राजस्थान

महोदय,
पारस-पखान का अद्यतन अंक पढ़ा। इस बार आपने इसमें सुभद्राकुमारी चौहान की कालजयी रचना 'झांसी की रानी' प्रकाशित कर बहुत सराहनीय कार्य किया है। हमारे घर के बच्चों ने कभी भी इस कविता को पूरे रूप में नहीं पढ़ा था। इन गर्मियों की छुट्टी में हमारे घर के बच्चों ने स्वयं तो इस कविता का भरपूर आनन्द लिया ही, उन्होंने अपने सहपाठियों को भी यह पूरी कविता पढ़वाई। मेरा अनुरोध है कि आप आगे भी इस तरह की रचनाओं को पुनर्प्रकाशित करें। यदि हो सके तो अगामी अंक में निराला की रचना–'राम की शक्ति पूजा' और 'सरोज स्मृति' अवश्य प्रकाशित करें। धन्यवाद!

डॉ. ए.पी. सिंह, मेडिकल कॉलेज, कोटा

आदरणीय संपादक जी,
'पारस-पखान' के इस अंक में नये-पुराने साहित्यकारों

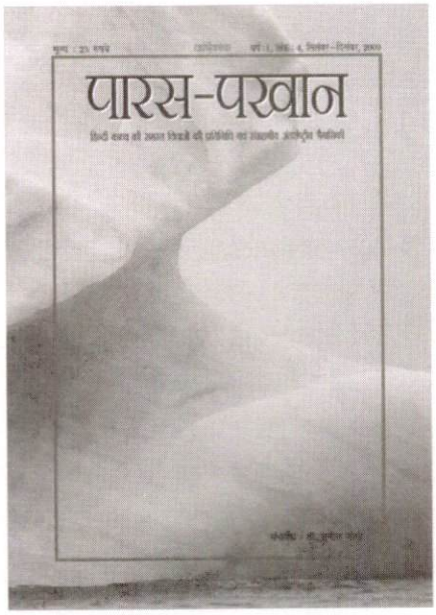

की जो रचनाएं दी हैं, वे सभी रचनाएं अनूठी और बेजोड़ हैं। पं. पारस नाथ पाठक प्रसून की कविता–'देश चाहता ऐसा मानव' बड़ी ही समीचीन और सार्वकालिक रचना है। इसी तरह कालजयी का डा. गोपाल सिंह नेपाली की कविता–'कवि' काफी सराहनीय है। साहित्य साम्राज्ञी महादेवी वर्मा की कविता–'दीप' बहुत ही उत्कृष्ट है। मेरा मन करता है, मैं इसे बार-बार पढ़ता जाऊं।

मैं जानना चाहता हूं, क्या 'पारस-पखान' इंटरनेट पर भी उपलब्ध है?

देवधर सिरोही, मालवीय नगर, इलाहाबाद

सर, मैं पारस-पखान का नियमित पाठक हूँ। 'समय के सारथी' के अंतर्गत छपने वाले समकालीन कवियों की रचनाएं न केवल स्तरीय हैं, अपितु विषय वैविध्य की दृष्टि से भी काफी अलग हैं। डॉ. कुंअर बेचैन की कविता–'ओ बासंती पवन' अलमस्त कर देने वाली रचना है। 'प्रवासी के बोल' कॉलम के अंतर्गत आप जिन प्रवासी भारतीयों की रचनाएं छापते हैं, उनकी उन रचनाओं से पता चलता है कि विदेश में जा बसे हमारे भारतीय भाई-बहन अब भी अपने वतन और संस्कृति से कितना अधिक लगाव रखते हैं।

एम.एम. जोशी, नागपुर

मेरे बाबू जी

– ई. अरुण कुमार पाठक

समय की अजस्त्र धारा बह रही है। धीरे-धीरे कराल काल की गति अग्रतर होती जा रही है। काल का विकराल रूप पीछे छूट गया किन्तु स्मृति पटल पर अवशेष रही स्मृतियाँ काल की गति से निष्प्रभावित निर्बाध भाव से अंकुरित व पल्लवित होती रही। मनस स्मृति की तेज गति को अंकित करने का प्रयास स्मृति पटल की चंचलता के कारण संभव नहीं हो पा रहा। बाबू जी की इतनी स्मृतियाँ हैं कि उनको एक लेखनी से आवृत्त कर शब्दांकित करना दुरूह ही नहीं असंभव-सा है। बाबू जी समग्र प्रतिभा व समग्र भाव से पूर्ण थे। उनके अन्दर कलाभाव यदि आशुरूप में थी तो वैज्ञानिक सोच कहीं से भी कम नहीं थी। जिन विपरीत परिस्थितियों में उन्होंने अपने जीवन का सफर शुरू किया था उसका हम भाई-बहनों में कोई भी प्रत्यक्षदर्शी तो नहीं है किन्तु जो माता जी तथा परिजनों व सगे-संबंधियों से सुना है उससे बाबूजी के प्रति श्रद्धाभाव और भी बढ़ जाता है। बचपन के खेलने-कूदने की उमर में ही प्रकृति-चक्र ने दादा व दादी जी को कालजयी करके बाबूजी के हाथों में गंगा के मजधार में डगमगाती नाव की पतवार थमा दी। उन्होंने उस नाव को संभाला ही नहीं, बल्कि झंझावातों से जूझते हुए एक किनारा ही नहीं, बल्कि एक सुन्दर व भव्य घाट प्रदान किया। किन्तु अगर दुख है तो केवल यह कि बाबू जी उस घाट पर रुक कर अपनी थकान दूर नहीं कर सके। ऐसा लगा जैसे ईश्वर ने बाबू जी को विशिष्ट कर्तव्य की परीक्षा हेतु सृजित किया था तथा परीक्षा उत्तीर्ण करते ही अपने पास उत्तर परीक्षा हेतु बुला लिया। परीक्षोपरान्त आनन्द लेने का भी समय नहीं दिया, इस बात का ईश्वर से सदा हमारी शिकायत रहेगी। साथ में खुद से ही शिकायत रहेगी। पूज्य बाबू जी, जिनके स्पर्श ने हम सभी को कांतिमय बनाया व चमकाया, को अपनी उपस्थिति का एहसास नहीं करा सका। दुर्भाग्य से अन्तिम साँस की बेला में इतने प्रवीण माँझी के इतने नजदीक रहते हुए भी हम लोग महाप्रयाण यात्रा के पहले आशीर्वाद नहीं ले पाये। यह बात हमेशा दिल को सालती रही है। किन्तु बाल्य काल से बाबू जी व माता जी के आशीर्वचनों के स्मृति अवशेष जो इस मानस पटल पर आविर्भूत हैं उस मूर्त को एकलव्य की मूर्ति की तरह अपने सान्निध्य में लगातार धनुष-संधान करने की कोशिश करता रहूंगा; सफलता अवश्य मिलेगी।

बाबू जी अक्सर कहा करते थे कि आदमी को किसी भी परिस्थिति में निराश नहीं होना चाहिए। ईश्वर परीक्षक की तरह हर मनुष्य की दिन-प्रतिदिन एक परीक्षा के बाद दूसरी कठिन परीक्षा लेता है। मुझे याद है सर्वोदय विद्यापीठ में नवीं कक्षा की हिन्दी की परीक्षा का पेपर पिता जी ने चेक किया। मुझे मेरे ही प्रतिस्पर्धी गंगा प्रसाद से दो नंबर कम दिया गया था। मैं निराश था क्योंकि बाकी सभी विषयों में मेरे अंक गंगा प्रसाद से ज्यादा थे, केवल हिन्दी को छोड़कर। विद्यालय में बाबू जी ने कुछ नहीं कहा, किन्तु घर आकर समझाया, बेटा अपना लक्ष्य ऊँचा रखो। अन्तिम परीक्षा, जहाँ की मार्किंग किसी और को करनी है, में ज्यादा अंक लेने का प्रयास करो। वह शब्द मेरे दिमाग में हमेशा रहता है। लगता है कि हम शिष्यों को इस संदेह के प्रसारार्थ इस जगत में छोड़ कर बाबू जी अपनी पर-परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये। बाबू जी बातें कम करते थे किन्तु किसी के प्रति उनका दुराव नहीं था। उनकी सोच थी कि किसी का भला कर सको तो ठीक, नहीं तो किसी का बुरा नहीं

करो। वक्त को व्यर्थ में न गवाओ। समाज का भला करने के साथ ही अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु समय की महत्ता को समझो। मुझे याद है हम ताराचन्द छात्रावास में बी.एस-सी. में पढ़ रहे थे। गांव से काफी लोग जनवरी माह में स्नान हेतु इलाहाबाद आने वाले थे। बाबू जी ने मुझसे कहा कि उन लोगों को रात्रि में छात्रावास में टिकाकर दूसरे सुबह ही पाँच बजे हॉस्टल से गंगा घाट के लिये भेज देना। बात सामान्य थी किन्तु बाबूजी यह चाहते थे कि गांव वाले जिनके पास कड़ाके की ठंड में ठहरने का स्थान नहीं था, उन्हें सुविधा मिल जाए। साथ ही साथ उनके अधिक समय तक रुकने से मेरी पढ़ाई भी डिस्टर्ब न हो। बाबू जी स्वयं छात्रावास आते थे तो जरूरत से ज्यादा छात्रावास में नहीं रुकते थे। वे आवश्यक सुविधाओं से हम लोगों को कदापि वंचित नहीं रखते थे। याद है, वे गर्मी के दिन में मेरे बार-बार मना करने के बाद भी कटरा की दुकान से किराये का पंखा व कूलर लाकर व ठीक कराकर घर वापस गये थे। शिक्षा पर विशेष ध्यान था उनका, गांव में भी अनुसूचित जाति तथा गरीबों के पढ़ने वाले बच्चों की फीस माफ कराना, विभिन्न प्रकाशकों से प्राप्त स्पेसीमेन पुस्तकों को गरीब छात्रों में वितरित कर देना तथा अमीरों के बच्चों को भी पढ़ने में रुचि पैदा करने में हमेशा तत्पर रहते थे। वे नकल के सख्त विरोधी थे। मुझे सर्वोदय विद्यापीठ के सातवीं कक्षा की एक घटना याद आती है, जब परीक्षा हॉल में नवीं कक्षा के एक नकलची छात्र के पास से नकल सामग्री पकड़े जाने पर उस नकलची छात्र ने प्रकार (एक उपकरण) की नोक से बाबू जी की अंगुली में चोट कर दिया था जिससे उनकी अंगुली से काफी खून निकला था। उसे परीक्षा से निष्कासित करने की बात तक आ गयी किन्तु बाद में उसके कभी भी नकल न करने का वादा करने के बाद बाबू जी ने उसके निष्कासन न करने की भी सिफारिश स्वयं की। वे किसी गलती पर बिगड़ते जरूर थे किन्तु बहुत ही क्षमाशील थे, किसी भी बात की गांठ नहीं बांधते थे। लोगों को सुधारने व सँवारने के लिए कभी-कभी कठिन निर्णय भी लेते थे। परीक्षा के समय वह हम लोगों को कतई डिस्टर्ब नहीं करते थे। आवश्यक वस्तुएँ लेकर स्वयं इलाहाबाद आ जाते थे। उनका कहना था कि अच्छी-अच्छी किताबें खरीदो तथा भारतीय संस्कृति के महानायकों, शहीदों, स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों, प्रसिद्ध व सफल कलाकारों, वैज्ञानिकों के जीवन चरित जरूर पढ़ो। बाबू जी केवल भौतिक सफलता में नहीं, बल्कि चारित्रिक सफलता में विश्वास करते थे। वह हर चीज को सही तरीके से पाना चाहते थे, दिलाना चाहते थे व बनाना चाहते थे। अनैतिकतापूर्ण बातें उन्हें पसन्द नहीं थी इसलिए कभी-कभी उनके तात्कालिक विरोधी अधिक हो जाते थे। अनावश्यक प्रलाप उन्हें पसंद नहीं था।

पूज्य बाबूजी की बहुत सारी स्मृतियाँ स्मृति गर्भ में पड़ी हैं किन्तु पटल पर इतनी स्मृतियों के ज्वार एक साथ उभर आते हैं कि एक का अंकन करते-करते दूसरी पीछे छूट जाती है। बाबू जी को अपनी श्रद्धासुमन से उनकी जयंती पर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए मैं यह उम्मीद करता हूं कि उनके आशीर्वचन व उनकी स्मृति हमेशा हम भाई-बहनों व परिवारजनों के साथ द्रोणाचार्य के मूर्ति की तरह सान्निध्यवत रहें तथा हम सभी इस धरा व गगन में वर्तमान उनके स्मृति वायु का अपने आसपास अहसास करते हुए निरन्तर उनकी कीर्तियों को प्रकीर्ण कर जगत को उनकी उपस्थिति का आभास कराते हुए अपनी व अपने परिवार की नाव को पार लगाने में सफल हो तथा इस समाज की समृद्धि में कुछ योगदान कर सके।

बाबूजी, आपको शत्-शत् नमन!

कालजयी काव्य पुरुष 'प्रसून' को शत् शत् नमन

– शिवकुमार 'बिलग्रामी'

स्वर्गीय पारसनाथ पाठक की यह 78वीं जयंती है। आज भले ही वह हमारे बीच सशरीर उपस्थित न हों पर उनकी रचनाएं हमें उनकी कायिक अनुपस्थिति का आभास नहीं होने देतीं। वह अपनी रचनाओं के माध्यम से आज भी हमारे मन-प्राणों में रचे-बसे हैं। पुण्यात्मा प्रसून जी जाने-माने कवि न सही, पर काव्यात्मक व्यक्ति के धनी थे। शैशव की घनीभूत पीड़ा और बाल्यकाल की उपेक्षा ने उनके जीवन को अनुभूति के उस स्तर तक ला दिया कि कविता स्वतः ही प्रवहमान हो चली :

तुम मिटाते जिस प्रणय को
मैं जिलाता उस प्रणय को
तुम मरण उसके प्रिये
तो प्राण मैं हूं
नाश तू निर्माण मैं हूं

उनकी अधिकतर कविताएं किशोरावस्था और युवावस्था में लिखी गयी हैं और इन्हें 'स्वर बेला' नामक काव्य संग्रह में प्रकाशित किया गया है। जिस कालखंड में स्वर्गीय प्रसून जी काव्य रचना कर रहे थे, वस्तुतः हिन्दी काव्य में वह प्रयोगवाद और नई कविता का दौर था। उस समय के अधिकतर कवि प्रयोगधर्मी थे। नवीनता की चाह में नई कविता पुराने केश-कलेबा त्याग रही थी और उसके आधुनिक युग बोध के साथ-साथ अतिशय वैयक्तिकता, यथार्थवादिता, क्षणवादिता और बौद्धिकता मुखरित हो रही थी। उस समय बहुत से ऐसे कवि थे जो अपनी निम्नस्तरीय भावानुभूति और भाषा बोध के बावजूद नयापन अपनाने की ललक के कारण युगीन कविता भी मुख्य धारा में आ गये, और पं. पारसनाथ पाठक 'प्रसून' जैसे उच्च भाव और भाषा बोध रखने वाले कवि शीर्ष पंक्ति में न आ सके।

इसका एक प्रमुख कारण यह था कि उन्होंने कभी भी स्वयं को 'कॅरियर' कवि के रूप में प्रतिष्ठापित करने का विचार नहीं रखा। उनमें पुराने काव्य मूल्यों के प्रति एकदम ठंडापन और नये काव्य मूल्यों के प्रति तात्कालिक गुनगुनापन नहीं आ पाया। नई कविता के युग में भी उनके काव्य में छायावाद की शैलीगत प्रवृत्तियां रहीं। आत्माभिव्यंजना, दुःख और वेदना की विवृत्ति के साथ-साथ उनके काव्य में ठीक वैसी ही रहस्य भावना बनी रही जैसी प्रसाद और महादेवी वर्मा के काव्य में है–

मधु प्रतीक्षा में तुम्हारी
बीत जाती रात सारी
मैं अकेला हूं यहां पर
पर न मिलते हाय दर्शन आज तेरे
कोई न आया पास मेरे

उनकी भाषा भी छायावाद चातुष्य (प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी वर्मा) की तरह प्रांजल और परिमार्जित रही–

तंद्रिल पलक नयन सित अलसित

भ्रमर सदृश पुत्तिल चिर सस्मित

परिवर्तन जग का नियम है। ऐसा नहीं कि स्वर्गीय प्रसून जी परिवर्तन प्रेमी नहीं थे। अपने जीवन के उत्तरकाल में उन्होंने समस्या प्रधान युगीन रचनाओं का सृजन किया। 'अंतर' और 'किसान' उनकी ऐसी ही युगनी रचनाएं है जिनमें उन्होंने विद्यमान सामाजिक सच्चाइयों को उद्घाटित किया है–

ये भूखे जर्जर किसान
बर्बर मानवता के निशान
खेतों पर मेहनत करते
कड़ी धूप में जलते
अपनी बहती स्वेद बूंद से
खेतों का मृदु सिंचन करते

स्वर्गीय प्रसून जी अपने समकालीन साहित्यकारों में डॉ. हरिवंश राय बच्चन और डॉ. धर्मवीर भारती से अत्यधिक प्रभावित थे। संवेदना के स्तर पर वह स्वयं को इन साहित्यकारों से अधिक एकाकार कर पाते थे। स्वनामधन्य डॉ. बच्चन और डॉ. भारती साठोत्तरी साहित्य के युग स्तम्भ हैं और इनका सृजन भाव और भाषा की दृष्टि से उत्कृष्ट और निर्दोष है। स्वर्गीय प्रसून जी की दृष्टि परिपूर्णतापरक थी। यही कारण था कि वह इन दोनों साहित्यकारों से अत्यधिक प्रभावित थे। वह स्वयं भी अपनी रचनाओं में इसी उत्कृष्टता और निर्दोषता के लिंए भरसक प्रयास करते थे–

कौन हो तुम चल रहे जग साथ ही पथ पर निरन्तर,
युग-युग पर तुम अमर हो शान्ति का सन्देश देकर।
कौन हो तुम खींचते हो आज अपनी ओर जग को
कौन हो तुम शांत रस से हो भिगोते क्लान्त मन को।

किसी भी व्यक्ति या रचनाकार का मूल्यांकन केवल उसके कार्यों से नहीं, अपितु उसकी जीवन दृष्टि से होता है। स्वर्गीय पारसनाथ पाठक 'प्रसून' काव्य रचना की दृष्टि से भले ही शीर्ष कवियों में शुमार न होते हों लेकिन उनके काव्य में जो जीवन दृष्टि है वह निश्चित रूप से उन्हें महान और कालजयी रचनाकर बनाती है–

देश चाहता ऐसा मानव जीवन में जो प्राण भरे
जगती में भर दे समरसता कष्टों का तूफान हरे।

कालजयी काव्य पुरुष प्रसून को शत्-शत् नमन!

बाबू जी मेरे आएंगे...

– डॉ. अनिल कुमार पाठक

सुन मेरी सिसकी औ' तड़पन,
बहते आँसू रुकती धड़कन।
वे खुद ही रुक ना पाएंगे,
बाबू जी मेरे आएंगे।।1।।

जबसे खोली आँखें हमने,
साकार किए सारे सपने।
तो कैसे अब ठुकराएंगे,
बाबू जी मेरे आएंगे।।2।।

अपना भविष्य करके स्वाहा,
सपने में भी पर-हित चाहा।
अब निष्ठुर क्यों हो जाएंगे,
बाबू जी मेरे आएंगे।।3।।

मुझे भरोसा है उन पर,
हैं कृपालु हर पल, सब पर।
वे हमें नहीं तड़पाएंगे,
बाबू जी मेरे आएंगे।।4।।

बेचैन हृदय की करुण कथा,
इस पीड़ित मन की मर्म व्यथा।
सुन मर्माहत हो जाएंगे,
बाबू जी मेरे आएंगे।।5।।

भारतीय जवानों के प्रति

– पं. पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

ओ मेरे जन्मभूमि के प्रहरी, ओ भारत के सच्चे त्राता।
देख तुम्हारे रण-कौशल को, देश तुम्हारा फिर से जागा।।

तुम अजेय, निर्बाध तुम्हारा बल, पौरुष अरु विक्रम,
संसार विदित है अमित तुम्हारा साहस और पराक्रम।
जिस ओर तुम्हारे नेत्र उठे, जल उठी प्रलय की ज्वाला,
युद्ध भूमि में दी बिखेर तुमने अरि-मुण्डों की माला।
जिस ओर तुम्हारे चरण बढ़े, अरि सिर के बल भागा,
रुद्र-वेश यह देख तुम्हारा, देश तुम्हारा फिर से जागा।

ओ मेरे जन्मभूमि के प्रहरी, ओ भारत के सच्चे त्राता।
देख तुम्हारे रण-कौशल को, देश तुम्हारा फिर से जागा।।

माँ भारत की रक्षा में है, अर्पित तुमने सर्वस्व किया,
सुमनों सा अपना शीश चढ़ा, तुमने माँ को उन्मुक्त किया।
यह त्याग तुम्हारे बलिदानों का, धरती पर गीत अमर होगा।
हर समय तुम्हारी पूजा में, घर आँगन में नव-दीप जलेगा,
ओ वीर-देश के समर-वीर! तेरी यह कीर्ति सदा गूँजेगी।
मातृ-भूमि की रक्षा में तुमने, माँ की ममता को भी त्यागा,
तेरे संकल्पों की छाया में, यह देश तुम्हारा फिर से जागा।

ओ मेरे जन्मभूमि के प्रहरी, ओ भारत के सच्चे त्राता।
देख तुम्हारे रण-कौशल को, देश तुम्हारा फिर से जागा।।

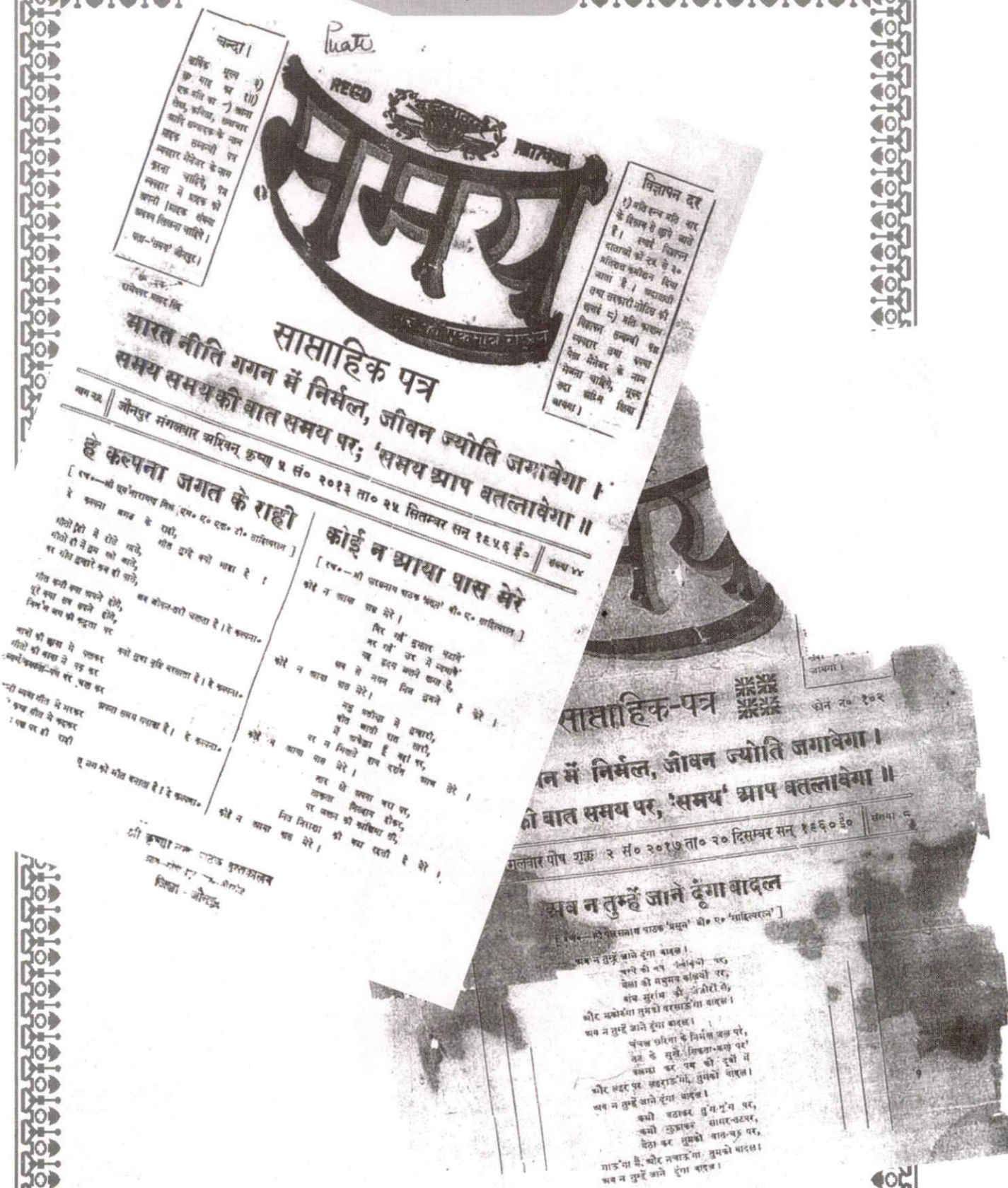

चन्दा।

समय

साप्ताहिक पत्र

भारत नीति गगन में निर्मल, जीवन ज्योति जगावेगा।
समय समय की बात समय पर; 'समय' आप बतलावेगा ॥

जौनपुर मंगलवार आश्विन कृष्णा ५ सं० २०१३ ता० २५ सितम्बर सन् १९५६ ई०

विज्ञापन दर

हे कल्पना जगत के राही

कोई न आया पास मेरे

साप्ताहिक-पत्र

...न में निर्मल, जीवन ज्योति जगावेगा।
...की बात समय पर, 'समय' आप बतलावेगा ॥

...मंगलवार पौष शुक्ल २ सं० २०१७ ता० २० दिसम्बर सन् १९६० ई०

अब न तुम्हें जाने दूंगा बादल

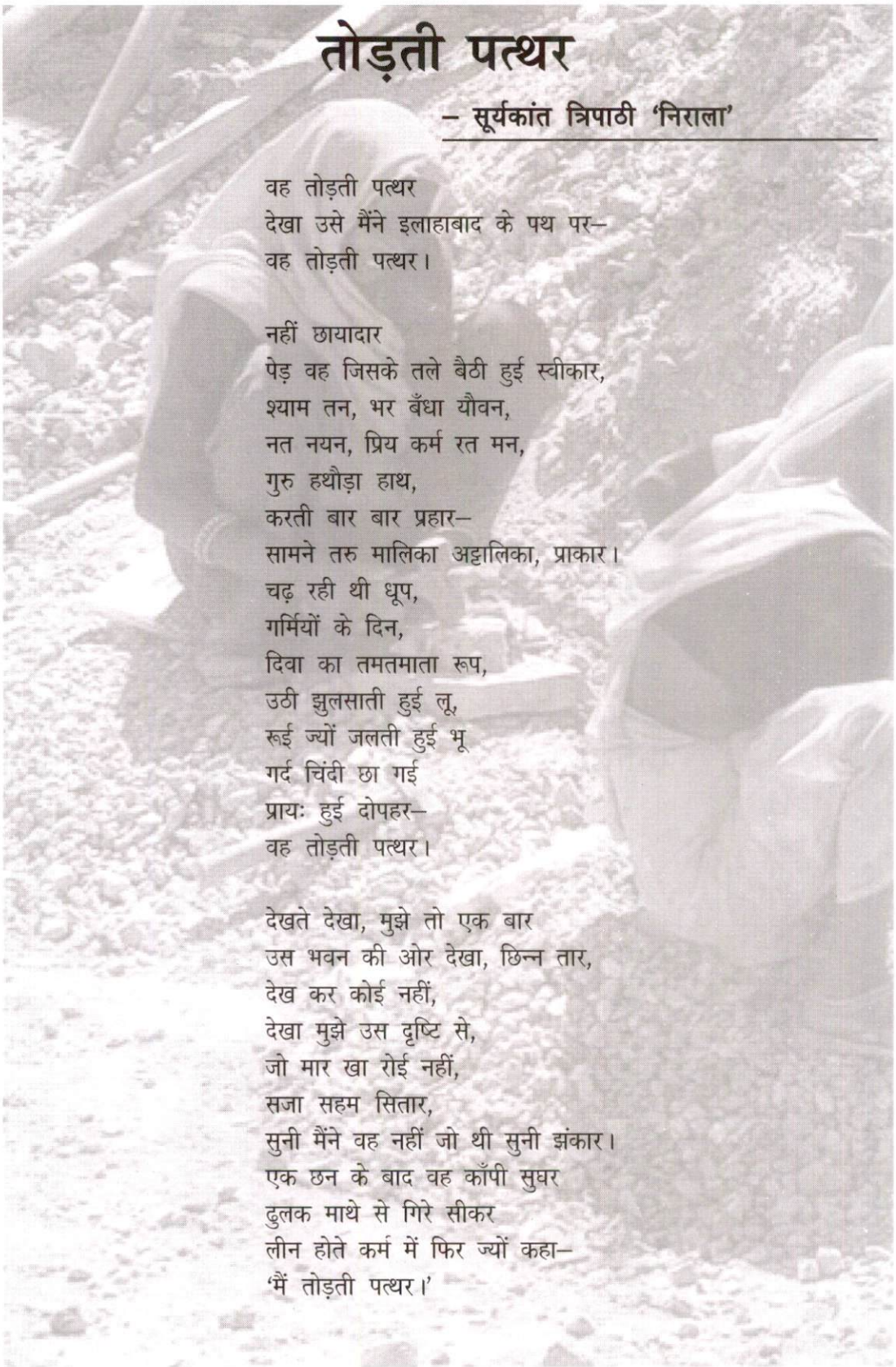

तोड़ती पत्थर

– सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर–
वह तोड़ती पत्थर।

नहीं छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन, भर बँधा यौवन,
नत नयन, प्रिय कर्म रत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार बार प्रहार–
सामने तरु मालिका अट्टालिका, प्राकार।
चढ़ रही थी धूप,
गर्मियों के दिन,
दिवा का तमतमाता रूप,
उठी झुलसाती हुई लू,
रूई ज्यों जलती हुई भू
गर्द चिंदी छा गई
प्रायः हुई दोपहर–
वह तोड़ती पत्थर।

देखते देखा, मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा, छिन्न तार,
देख कर कोई नहीं,
देखा मुझे उस दृष्टि से,
जो मार खा रोई नहीं,
सजा सहम सितार,
सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार।
एक छन के बाद वह काँपी सुघर
ढुलक माथे से गिरे सीकर
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा–
'मैं तोड़ती पत्थर।'

सब कुछ कह लेने के बाद

– सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

सब कुछ कह लेने के बाद
कुछ ऐसा है जो रह जाता है
तुम उसको मत वाणी देना।

वह छाया है मेरे पावन विश्वासों की,
वह पूँजी है मेरे गूँगे अभ्यासों की,
यह सारी रचना का क्रम है,
बस इतना ही मैं हूँ,
बस उतना ही मेरा आश्रय है,
तुम उसको मत वाणी देना।

यह पीड़ा है जो हमको, तुमको, सबको अपनाती है,
सच्चाई है–
अनजानों का भी हाथ पकड़ चलना सिखलाती है,
यही गति है–हर गति को नया जन्म देती है,
आस्था है–रेती में भी नौका खेती है,
वह टूटे मन का सामर्थ है,
यह भटकी आत्मा का अर्थ है,
तुम उनको मत वाणी देना।
वह मुझसे या मेरे युग से भी ऊपर है,
वह आदी मानव की भाँति है भू पर है,
बर्बरता में भी देवत्व की कड़ी है वह,
इसीलिए ध्वंस और नाश से बड़ी है वह,

अन्तराल है वह–नया सूर्य उगा देती है,
नए लोक, नई सृष्टि, नए स्वप्न देती है,
वह मेरी कृति है
पर मैं उसकी अनुकृति हूँ
तुम उसको मत वाणी देना।

दुनिया

– रघुवीर सहाय

हिलती हुई मुँडेरें हैं और चटखे हुए हैं पुल
बररे हुए दरवाजे हैं और धँसते हुए चबूतरे

दुनिया एक चुरमुरायी हुई-सी चीज हो गई है
दुनिया एक पपड़ियायी हुई-सी चीज हो गई है

लोग आज भी खुश होते हैं
पर उस वक्त एक बार तरस जरूर खाते हैं
लोग ज्यादातर वक्त संगीत सुना करते हैं
पर साथ-साथ और कुछ जरूर करते रहते हैं
मर्द मुसाहबत किया करते हैं, बच्चे स्कूल का काम
औरतें बुना करती हैं–दुनिया की सब औरतें मिलकर
एक दूसरे के नमूनोंवाला एक अनंत स्वेटर
दुनिया एक चिपचिपायी हुई-सी चीज हो गई है।

लोग या तो कृपा करते हैं या खुशामद करते हैं
लोग या तो ईर्ष्या करते हैं या चुगली खाते हैं
लोग या तो शिष्टाचार करते हैं या खिसियाते हैं
लोग या तो पश्चाताप करते हैं या घिघियाते हैं
न कोई तारीफ करता है न कोई बुराई करता है
न कोई हँसता है न कोई रोता है
न कोई प्यार करता है न कोई नफरत
लोग या तो दया करते हैं या घमंड
दुनिया एक फफूँदियायी हुई-सी चीज हो गई है।

लोग कुछ नहीं करते जो करना चाहिए तो लोग करते क्या हैं
यही तो सवाल है कि लोग करते क्या हैं अगर कुछ करते हैं
लोग सिर्फ लोग हैं, तमाम लोग, मार तमाम लोग
लोग ही लोग हैं चारों तरफ लोग, लोग, लोग
मुँह बाये हुए लोग और आँख चुँधियाये हुए लोग

कुढ़ते हुए लोग और बिराते हुए लोग
खुजलाते हुए लोग और सहलाते हुए लोग
दुनिया एक बजबजायी हुई-सी चीज हो गई है।

साबरमती के संत

– प्रदीप

दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल।

आँधी में भी जलती रही गांधी तेरी मशाल
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल।

धरती पे लड़ी तूने अजब ढब की लड़ाई
दागी न कहीं तोप न बंदूक चलाई
दुश्मन के किले पर भी न की तूने चढ़ाई
वाह रे फकीर खूब करामात दिखाई

चुटकी में दुश्मनों को दिया देश से निकाल
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल।

शतरंज बिछा कर यहाँ बैठा था जमाना
लगता था कि मुश्किल है फिरंगी को हराना
टक्कर थी बड़े जोर की दुश्मन भी था दाना
पर तू भी था बापू बड़ा उस्ताद पुराना

मारा वो कस के दाँव कि उल्टी सभी की चाल
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल।

जब-जब तेरा बिगुल बजा जवान चल पड़े
मजदूर चल पड़े थे और किसान चल पड़े
हिंदू व मुसलमान सिख पठान चल पड़े
कदमों पे तेरे कोटि कोटि प्राण चल पड़े

फूलों की सेज छोड़ के दौड़े जवाहरलाल
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल।

मन में थी अहिंसा की लगन तन पे लंगोटी
लाखों में घूमता था लिए सत्य की सोंटी

कालजयी

वैसे तो देखने में थी हस्ती तेरी छोटी
लेकिन तुझसे झुकती थी हिमालय की भी चोटी

दुनिया में तू बेजोड़ था इंसान बेमिसाल
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल।

जग में कोई जिया है तो बापू तू ही जिया
तूने वतन की राह में सब कुछ लुटा दिया
माँगा न कोई तख्त न तो ताज ही लिया
अमृत दिया सभी को मगर खुद जहर पिया

जिस दिन तेरी चिता जली रोया था महाकाल
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल।

वक़्त जीवन में ऐसा न आये कभी
ख़त किसी के भी कोई जलाये कभी
मेरी मासूमियत खो गई है कहीं
काश, बचपन मेरा लौट आए कभी!

—अशोक अंजुम

जीवन में अरमानों का

– बलबीर सिंह 'रंग'

जीवन में अरमानों का आदान-प्रदान नहीं होता है।

मैंने ऐसा मनुज न देखा
अंतर में अरमान न जिसके,
मिला देवता मुझे न कोई
शाप बने वरदान न जिसके।
पंथी को क्या ज्ञात कि
पथ की जड़ता में चेतनता है?
पंथी के श्रम स्वेद-कणों से पथ गतिमान नहीं होता है।
जीवन में अरमानों का आदान-प्रदान नहीं होता है।

यदि मेरे अरमान किसी के
उर पाहन तक पहुँच न पाए,
अचरज की कुछ बात नहीं
जो जग ने मेरे गीत न गाए।
यह कह कर संतोष कर लिया–
करता हूँ मैं अपने उर में,
अरुण शिखा के बिना कहीं क्या स्वर्ण-विहान नहीं होता है
जीवन में अरमानों का आदान-प्रदान नहीं होता है।

मैं ही नहीं अकेला आकुल
मेरी भाँति दुखी जन अनगिन,
एक बार सब के जीवन में
आते गायन रोदन के क्षण,
फिर भी सब के मन का सुख-दुख एक समान नहीं होता है।
जीवन में अरमानों का आदान-प्रदान नहीं होता है।

मेरी तारीफ़ के पुल बांधना मत
मैं इक तैराक होना चाहता हूँ।
–सरदार आसिफ

काँटे मत बोओ

– रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

यदि फूल नहीं बो सकते तो, काँटे कम से कम मत बोओ।

है अगम चेतना की घाटी, कमजोर बड़ा मानव का मन,
ममता की शीतल छाया में, होता कटुता का स्वयं शमन।
ज्वालाएँ जब घुल जाती हैं, खुल-खुल जाते हैं मुँदे नयन,
होकर निर्मलता में प्रशांत बहता प्राणों का क्षुब्ध पवन।

संकट में यदि मुस्का न सको, भय से कातर हो मत रोओ।
यदि फूल नहीं बो सकते तो, काँटे कम से कम मत बोओ।

हर सपने पर विश्वास करो, लो लगा चाँदनी का चंदन,
मत याद करो, मत सोचो, ज्वाला में कैसे बीता जीवन।
इस दुनिया की है रीत यही–सहता है तन, बहता है मन,
सुख की अभिमानी मदिरा में, जो जाग सका वह है चेतन।

इसमें तुम जाग नहीं सकते, तो सेज बिछाकर मत सोओ।
यदि फूल नहीं बो सकते तो, काँटे कम से कम मत बोओ।

पग-पग पर शोर मचाने से, मन में संकल्प नहीं जगता,
अनसुना-अचीन्हा करने से, संकट का वेग नहीं थमता।
संशय के सूक्ष्म कुहासों में, विश्वास नहीं क्षण भर रमता,
बादल के घेरों में भी तो, जयघोष न मारुत का थमता।

यदि बढ़ न सको विश्वासों पर, साँसों के मुर्दे मत ढोओ।
यदि फूल नहीं बो सकते तो, काँटे कम से कम मत बोओ।

पेशेवर हाथों में मत खुशबू देना
गुल को गुलकन्द बनाकर बेच न दें।
–अनिल जलालपुर

ज़िन्दगी

– कन्हैयालाल नन्दन

(एक)

रूप की जब उजास लगती है
ज़िन्दगी
आसपास लगती है
तुमसे मिलने की चाह
कुछ ऐसे
जैसे ख़ुशबू को
प्यास लगती है।

(दो)

न कुछ कहना
न सुनना
मुस्कराना
और आँखों में ठहर जाना
कि जैसे
रौशनी की
एक अपनी धमक होती है
वो इस अंदाज़ से
मन की तहों में
घुस गए
उन्हें मन की तहों ने
इस तरह अंबर पिरोया है
सुबह की धूप जैसे
हार में
शबनम पिरोती है।

(तीन)

जैसे तारों के नर्म बिस्तर पर
खुशनुमा चाँदनी
उतरती है
इस तरह ख़्वाब के बगीचे में
ज़िन्दगी
अपने पाँव धरती है

और फिर करीने से
ताउम्र
सिर्फ
सपनों के
पर कुतरती है।

(चार)

ज़िन्दगी की ये ज़िद है
ख़्वाब बन के
उतरेगी।
नींद अपनी ज़िद पर है
–इस जनम में न आएगी

दो ज़िदों के साहिल पर
मेरा आशियाना है
वो भी ज़िद पे आमादा
–ज़िन्दगी को
कैसे भी
अपने घर
बुलाना है।

आमंत्रण देता रहा, प्रिया तुम्हारा गाँव।
सपनों में चलते रहे, रात-रात भर पाँव।।
–अशोक 'अंजुम'

कॉलेज में अध्यापन का कार्य कर चुके **गोपाल दास 'नीरज'**, वर्तमान समय में सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हैं। हिंदी फिल्मों में गीत लेखन में भी सर्वोत्कृष्ट कार्य किया। इन्होंने अपनी मर्मस्पर्शी काव्यानुभूति तथा सहज-सरल भाषा द्वारा हिन्दी कविता को एक नया मोड़ दिया है और बच्चन जी के बाद कवियों की नई पीढ़ी को सर्वाधिक प्रभावित किया। आज अनेक गीतकारों के कंठ में उन्हीं की अनुगूँज है। भारत सरकार ने उन्हें पद्म भूषण से अलंकृत किया है।

प्रमुख रचनाएँ :

कविता संग्रह : *दर्द दिया, प्राण गीत, आसावरी, बादर बरस गयो, दो गीत, नदी किनारे, नीरज की गीतिकाएँ, संघर्ष, विभावरी, नीरज की पाती, लहर पुकारे, मुक्तक, गीत भी अगीत भी* इत्यादि।
पत्र संकलन : *लिख-लिख भेजूँ पाती*
आलोचना : *पंत : कला, काव्य और दर्शन।*

छिप छिप अश्रु बहाने वालों

– गोपाल दास 'नीरज'

छिप-छिप अश्रु बहाने वालों!
मोती व्यर्थ लुटाने वालों!
कुछ सपनों के मर जाने से जीवन नहीं मरा करता है।

सपना क्या है? नयन सेज पर,
सोया हुआ आँख का पानी,
और टूटना है उसका ज्यों,
जागे कच्ची नींद जवानी,
गीली उमर बनाने वालों! डूबे बिना नहाने वालों!
कुछ पानी के बह जाने से सावन नहीं मरा करता है।

माला बिखर गई तो क्या है,
खुद ही हल हो गई समस्या,
आँसू गर नीलाम हुए तो,
समझो पूरी हुई तपस्या,
रूठे दिवस मनाने वालों! फटी कमीज सिलाने वालों!
कुछ दीपों के बुझ जाने से आँगन नहीं मरा करता है।

खोता कुछ भी नहीं यहाँ पर,
केवल जिल्द बदलती पोथी।
जैसे रात उतार चाँदनी,
पहने सुबह धूप की धोती,
वस्त्र बदलकर आने वालों! चाल बदलकर जाने वालों!
चंद खिलौनों के खोने से बचपन नहीं मरा करता है।

लाखों बार गगरियाँ फूटीं,
शिकन न आई पनघट पर,
लाखों बार कश्तियाँ डूबीं,
चहल-पहल वो ही है तट पर,
तम की उमर बढ़ाने वालों! लौ की आयु घटाने वालों!
लाख करे पतझर कोशिश पर उपवन नहीं मरा करता है।

लूट लिया माली ने उपवन,
लुटा न लेकिन गंध फूल की,
तूफानों तक ने छेड़ा पर,
खिड़की बन्द न हुई धूल की,
नफरत गले लगाने वालों! सब पर धूल उड़ाने वालों!
कुछ मुखड़ों की नाराजी से दर्पन नहीं मरा करता है!

बर्छियां, तीर, भाले नहीं चाहिए
घर जलाकर उजाले नहीं चाहिए
देश मेरा सलामत रहे दोस्तो
मुझको मस्ज़िद-शिवाले नहीं चाहिए।

–नागेन्द्र अनुज

भारतीय समाज में राष्ट्रवादी विचारधारा को जाग्रत करने और प्रचार-प्रसार को अपना ध्येय बनाने वाले **शशिकांत यादव 'शशि'** का जन्म 24 अप्रैल, 1973 को देवास (म.प्र.) में हुआ था। चौदह वर्ष की छोटी अवस्था से देश के विभिन्न स्थानों पर काव्यपाठ और मंच का सफलतापूर्वक संचालन कर चुके ये युवा कवि कई सम्मानों और पुरस्कारों से भी नवाजे जा चुके हैं। संप्रति *संस्कार विद्यापीठ, देवास* के सचिव और *समर्पण सेवा समिति, देवास* के संयोजक के रूप में अपनी सेवा दे रहे हैं।

देखी ऐसी भी बरसात

– शशिकांत यादव 'शशि'

भ्रष्टाचार की उठी घटाएं
रिश्वत रिमझिम बरस रही
ओले पड़ गए प्रतिभाओं पर
अवसर को सब तरस रहे
तड़ित गिरी तानों की ऐसी
परिणाम हुआ बस आत्मघात
देखी, ऐसी भी बरसात!

मानसून-सी हो गई रोटी
पेट निधरा करता राह
मुख पर न छापी हरियाली
मन की रह गई मन में चाह
संकट बरसा पीड़ा बरसी
और बरसे आँसू दिन-रात
देखी, ऐसी भी बरसात!

हरियाली पर पानी बरसा
सूखे का है हाल यही
अभाव मिटा कर वैभव कर दे
ऐसी बदली एक नहीं
प्यास नहीं है जहाँ किसको
पानी बरसा वहीं दिन-रात
देखी, ऐसी भी बरसात!

आज व्यवस्था हुई बाढ़-सी
जनजीवन से खेल रही है
टूट गए तार बंध न्याय के
और अराजकता फैल रही है
प्रजातंत्र भी नैतिकता पर
ओछी राजनीति के आघात
देखी, ऐसी भी बरसात!

कूड़ा बीनते बच्चे

– अनामिका

उन्हें हमेशा जल्दी रहती है
उनके पेट में चूहे कूदते हैं
और खून में दौड़ती है गिलहरी!
बड़े-बड़े डग भरते
चलते हैं वे तो
उनका ढीला-ढाला कुर्ता
तन जाता है फूलकर उनके पीछे
जैसे कि हो पाल कश्ती का!
बोरियों में टनन-टनन गाती हुई
रम की बोतलें
उनकी झुकी पीठ की रीढ़ से
कभी-कभी कहती हैं–
'कैसी हो', 'कैसा है मंडी का हाल?'
बढ़ते-बढ़ते
चले जाते हैं वे
पाताल तक
और वहाँ लग्गी लगाकर
बैंगन तोड़ने वाले
बौनों के वास्ते
बना देते हैं
माचिस के खाली डिब्बों के
छोटे-छोटे कई घर
खुद तो वे कहीं नहीं रहते,
पर उन्हें पता है घर का मतलब
वे देखते हैं कि अकसर
चींटे भी कूड़े के ठोंगों से पेड़ा खुरचकर
ले जाते हैं अपने घर
ईश्वर अपना चश्मा पोंछता है
सिगरेट की पन्नी उनसे ही लेकर।

आदमी के साथ

– लक्ष्मीशंकर वाजपेयी

पहले ही लाख डर हैं हरेक आदमी के साथ।
उसपे भी मौत जोड़ी गई ज़िंदगी के साथ।।

ज्यादा चमक में लोगों ने देखा न हो मगर।
हैं खूब अँधेरे भी नई रोशनी के साथ।।

मुमकिन नहीं कि सबको हमेशा खुशी मिले।
होते हैं धूप-छाँव-से ग़म भी ख़ुशी के साथ।।

उसकी चिता पे जिस्म ही, उसका नहीं जला।
खुशियाँ भी घर की राख हुई थीं उसी के साथ।।

सदियों की ले थकन भी निरंतर सफर में ही
रहने को रहे लाख भँवर भी नदी के साथ।।

इक हादसे में कैसे नशेमन उजड़ गए
देखा था सब शजर ने बड़ी बेबसी के साथ।।

दरिया के हबाबों की तरफ देखता रहा
फिर अपने ही ख़्वाबों की तरफ देखता रहा
बे-इल्मो-हुनर लोग कहाँ तक पहुँच गए
मैं अपनी किताबों की तरफ देखता रहा।

–डॉ. शमीम देवबन्दी

हिंदी दिवस (14 सितंबर) पर विशेष

हे देवनागरी!

– राजेश पंकज

नई सदी की नई सुबह,
नई सुबह का सूर्य उगा,
भोर भई अब जाग री,
जागे तेरे भाग री।
हे देवनागरी!

देव लोक की अप्सरा,
धन्य हुई भारत धरा,
गूँजा तुझसे भूभाग री,
जागा अपना भाग री।
हे देवनागरी!

तू हिंदी कभी हिंदुस्तानी,
इस लोकराज की है रानी,
है तेरा यही अंदाज री,
तू है भारत का राग री।
हे देवनागरी!

संस्कृत की है आत्मजा,
पंजाबी है तेरी अग्रजा,
बिंदी भारत के भाल री,
तू भारत का अनुराग री।
हे देवनागरी!

आजादी के रण का बिगुल बनी,
अंग्रेजी के पथ पर जा तनी,
आजादी का तू राग री,
भारत का सौभाग री।
हे देवनागरी!

छुअन पुष्पगंधा बन जाए

– डॉ. अशोक मधुप

बस्ती, नगर, गली, घर तेरे, हर बहार ने ली अँगड़ाई,
लेकिन मेरे घर-आँगन में, पतझड़ था, मधुमास नहीं था।
पास मेरे तुम आयीं जैसे,
फूलों में खुशबू बस जाये।
तुमने मन को छुआ कि जैसे,
छुअन पुष्पगंधा बन जाये।
अधर कँवल से, नयन भ्रमर से,
लहरों सा इठलाता यौवन,
वे भी क्या दिन थे जब तुमने,
प्यार भरे बादल बरसाये।
सम्मोहन से रूपजाल तक, इतने सारे जाल बिछाकर,
कोसों दूर चली जाओगी, इसका तो आभास नहीं था।
तुम आयीं तब लगा कि जैसे,
आया चाँद उतर घर मेरे।
यादों के सावन में अब तो,
सुधियों के बादल हैं घेरे।
धर कर रूप मेनका तुमने,
मेरा व्रत उपवास डिगाया,
अब पल-पल आकर यादों में,
मुझे रुलातीं साँझ-सबेरे।
इन्द्रधनुष सी बाँहों में भर, आलिंगन-अभिसार मुझे दे,
फिर तुम ऐसे ठुकराओगी, इतना तो विश्वास नहीं था।
याद तुम्हें भी होंगी वे सब,
सपनों की आज़ाद उड़ानें।
अंकपाश में बैठ के मेरे,
बुनती थीं जब ताने-बाने।
लगता है अब जैसे कि वह,
साथ तुम्हारा ही सपना था,
या फिर वे सपने ही सारे,
हुए आजकल बहुत सयाने।
पतझड़ के झंझावातों के, खाये बहुत थपेड़े लेकिन
किस्मत में तेरे आँचल का, तिलभर भी आकाश नहीं था।

संत्रासों में कटी जिन्दगी,
जीवन भर भोगी पीड़ायें।
बिन माँझी सी नाव ज़िन्दगी,
अर्थहीन हो गयीं दिशायें।
फागुन की अल्हड़ बयार में,
पोर-पोर लेता अँगड़ाई,
बोल तुम्हारे छन्द बन गये,
भावों की बन गयीं ऋचाएं।
गीत हमारे बिना तुम्हारे, इसीलिए रह गए अधूरे,
तुझमें थीं सारी उपमायें, मेरे ढिग अनुप्रास नहीं था।

या बदचलन हवाओं का रुख़ मोड़ देंगे हम,
या खुद को वाणीपुत्र कहना छोड़ देंगे हम,
जिस दिन भी हिचकिचायेंगे लिखने में हक़ीक़त,
काग़ज़ को फाड़ देंगे, कलम तोड़ देंगे हम।

–शिव ओम 'अम्बर'

फूलों का दर्द

–शरद तैलंग

मिला जो न्योता ऋतु बसंत का सज कर निकले फूल सभी
पल भर का जीवन है उनका क्षणिक गए थे भूल सभी।
पत्तों ने जब फूलों को देखा तो मुंह को बिचकाया
और कहा तुम सब के होते हम सब पर संकट छाया।

मानव तो सुंदरता की ही करता रहा सदा पूजा
इसके आगे उस प्राणी को और न कुछ भाए दूजा।
आज तुम्हारे आगे हम पत्तों का कोई मान नहीं
सभी चाहते हैं तुमको, हम पर तो किसी का ध्यान नहीं।

इसीलिए बतलाओ, तुम इस मौसम में क्यों आते हो
अपने लिए प्यार का तोहफा, नफरत हमको लाते हो?
फूलों ने पत्तों का ऐसा रुख़ देखा तो समझाया
सुंदरता का कैसा मोल चुकाना पड़ता, बतलाया।

कहा, तुम्हारी बातें सच हैं जिसका कोई तर्क नहीं
लेकिन हम फूलों में और गणिकाओं में कुछ फर्क नहीं।
बागों में, बाजारों में भी हमें सजाया जाता है
उन जैसा ही हमको सबके आगे लाया जाता है।

कुछ सिक्कों के बदले में हमको ले जाया जाता है
नेताओं धनवानों के सम्मुख पहुँचाया जाता है।
कभी-कभी तो रात-रात भर घुट-घुट मरना पड़ता है
हमको उनकी बांहों में और गले लिपटना पड़ता है।

क्षण भर को तो लोग हमें अपने घर में ले जाते हैं
काम निकल जाने पर फिर वे सड़कों पर फिंकवाते हैं।
कम से कम अपनों के संग तुम खुशी-खुशी सब हो रहते
सुंदरता अभिशाप हमारे लिए जिसे हम सब सहते।

सुनकर बातें फूलों की पत्तों का भी तब मन डोला
फूलों का ये दर्द समझ कर उनसे कुछ न गया बोला।

रेत पर नाम

– डॉ. विष्णु सक्सेना

रेत पर नाम लिखने से क्या फायदा
एक आई लहर कुछ बचेगा नहीं
तुमने पत्थर का दिल हमको कह तो दिया
पत्थरों पर लिखोगे, मिटेगा नहीं।

मैं तो पतझर था फिर क्यों निमंत्रण दिया
ऋतु बसंती को तन पर लपेटे हुए
आस मन में लिए, प्यास तन में लिए
कब शरद आई पल्लू समेटे हुए
तुमने फेरी निगाहें, अंधेरा हुआ
ऐसा लगता है सूरज उगेगा नहीं।। रेत पर...

मैं तो होली मना लूंगा सच मान लो,
तुम दिवाली बनोगी ये आभास दो
मैं तुम्हें सौंप दूंगा तुम्हारी धरा,
तुम मुझे मेरे पंखों का आकाश दो।
उंगलियों पर दुपट्टा लपेटो न तुम
यूं करोगी तो दिल चुप रहेगा नहीं।। रेत पर...

आंख खोली, तो तुम रुक्मणी-सी दिखीं,
बंद की आंख तो राधिका तुम लगीं।
जब भी देखा तुम्हें शांत-एकांत में,
मीराबाई-सी एक साधिका तुम लगीं।
कृष्ण की बांसुरी पर भरोसा रखो
मन कहीं भी रहे पर डिगेगा नहीं।। रेत पर...

तपती हुई ज़मीं हैं जलधार बाँटता हूँ
सुनसान रास्तों पर झंकार बाँटता हूँ
ये आग का है दरिया जीना भी बहुत मुश्किल
नफ़रत के दौर में भी, मैं प्यार बाँटता हूँ।

–डॉ. विष्णु सक्सेना

उस क्षण मेरा प्यार जगाना

– रमाशंकर शुक्ल 'हृदय'

उस क्षण मेरा प्यार जगाना।
जब पलकों के परदे पर इस
दुनिया का होता हो चित्रण,
जब वह दुनिया भी बैठी हो
बनी पुतलियों में आकर्षण,
तब नवीन संसार जगाना।

हृदय भेजता हो जब धड़कन,
कहीं छिपाने को सूनापन,
जब विश्वास छीनकर कोई
कर जाता हो उसको निर्धन,
तब असीम अभिसार जगाना।

जब हो केवल एकाकीपन,
कहीं न कुछ भी छू पाए मन,
जब मन भी खो बैठे बरबस,
अपनी स्मृति विस्मृति के बंधन,
तब सूना विस्तार जगाना।

जब हो अंतभूत चिरंतन
में अभाव का झंझा नर्तन,
जब मेरी ही दृष्टि प्रलय-सी,
घिर आए मुझ पर बादल बन,
तब रस-विकल मल्हार जगाना।

जब निर्झरिणी-सी यह आशा,
पुलकित करे हृदय-तट आ-आ,
जब अशेष सिकता-कण चुंबन
सी हो जीवन की अभिलाषा,
तब वह हा-हा-कार जगाना।
उस क्षण मेरा प्यार जगाना।।

अपने को मिटाना सीखो

– प्रो. सुरेश ऋतुपर्ण (जापान)

बह जाता है सब पानी की तरह
झर जाता है सब पत्तियों की तरह
उड़ जाता है सब गंध बन
बरस जाता है सब मेघों की तरह

उगता है सूरज
ढलता है सूरज
उमगता है चाँद
टूटते हैं सितारे
खिलते हैं फूल
झरती हैं पत्तियाँ
उड़ते हैं परिंदे
टिमटिमाते हैं जुगनू
काँटों की नोंक पर
ओस झिलमिलाती है
शोख चंचल लहर
आती है जाती है
हवा डोलती है
यहाँ से वहाँ हरदम

बताओ कौन है सृष्टि में
ऐसा निष्क्रिय और चुप
जैसे कि तुम हो
गुमसुम बैठे हो
रखे हाथ पर हाथ
अहंकार में डूबते-उतराते
अपनी क्षुद्रता में लीन
टिकाए हो हथेली पर माथ

उठो और बहना सीखो
खिलो और झरना सीखो
प्रकृति के पास जाओ
उसकी तरह प्रफुल्ल मन
जीना और मरना सीखो

सौंदर्य जीने में नहीं
मरने में है।
अपने को मिटाना सीखो।

कभी सम्मान होता है
कभी अपमान होता है
कभी उन्नति, कभी अवनति,
समय बलवान होता है।
–विनोद चन्द्र पाण्डेय 'विनोद'

घर पहुँचने का रास्ता

– **प्राण शर्मा** (लंदन)

जग में मुरीद अपना बनाता किसे नहीं
फनकार अपने फन से रिझाता किसे नहीं

घर में वो अपनी जिद्द से सताता किसे नहीं
ऐ दोस्त जिद्दी बच्चा रुलाता किसे नहीं

इतना भी भूला-भटका किसी को नहीं समझ
घर पहुँचने का रास्ता आता किसे नहीं

हमने सुनाई आपको तो क्या बुरा किया
हर शख़्स अपनी खूबी सुनाता किसे नहीं

यूँ तो किसी को भूलना आसां नहीं मगर
एहसान फरामोश भुलाता किसे नहीं

खुदगर्ज इतना है कि जरूरत में दोस्तो
इंसान अपना दोस्त बनाता किसे नहीं

ए 'प्राण' बच के रहना निगाहों से तुम उसकी
दुश्मन डगर से अपनी हटाता किसे नहीं

चाल घोड़े की चलने लगा है
पेट में पाप पलने लगा है
अब न विश्वास कुछ आदमी का
बात कहकर बदलने लगा है।
–तोताराम 'सरस'

बारिश

– **अमरेन्द्र नारायण** (बैंकॉक)

है बहुत तपिश हर आंगन में, है लगी आग खलिहानों में
ईश्वर तुम थोड़ी कृपा करो इस गांव को थोड़ी बारिश दो

वे दिन गुजरे जब घर-घर में बस एक अंगीठी जलती थी
ममता के स्नेहिल हाथों से वात्सल्य की थाली सजती थी
घर-घर के हर कमरे में अब बस भट्ठी एक सुलगती है
भोलापन कहीं बिलखता है और करुणा कहीं मचलती है

बगिया में फूल तो खिलते हैं पर उनमें परिचित गंध नहीं
शायद खिलने में फूलों को मिलता कोई आनंद नहीं
आंगन में तरु की छाया भी कुछ चैन नहीं दे पाती है
ठंडी बयार आते-आते कुछ श्रांत शिथिल हो जाती है

भगवान तुम्हारी कृपा बिना यह आग नहीं बुझ पाएगी
फूलों की लाली गालों पर आते-आते रुक जाएगी
मरने की जो मन्नत करते उनमें जीने की ख्वाहिश दो
ईश्वर तुम इतनी कृपा करो इस गांव को थोड़ी बारिश दो।

जो लहू से लिखी जाए, दिल की कहानी होगी,
वक़्त को बदल दे किस्मत की रवानी होगी,
कार्य को असंभव तो कहते हैं सदा निर्बल–
देश के जो काम आए, वो सच्ची जवानी होगी।

–अलीहसन मकरैंडिया

आस्था का उजाला

– **पुष्पिता** (सूरीनाम)

प्रवासी भारतवंशियों ने
सात समुंदर पार
सूरीनाम की धरती पर रचे हैं
संस्कृति-मंदिर
कृष्ण-राधा मंदिर
गायत्री मंदिर
विष्णु मंदिर
दुर्गा मंदिर
शिव मंदिर
आर्य-समाजियों की यज्ञशालाएं,
भीतर जिनके भगवान ...देवी ...देवता
रामायण, पुराण और गीत।

सूर्य
मंदिर के शिखरों से पहुंचता है
आस्था बनकर
पाषाण प्रतिमा में
और सौंपता है
इन पावन मंदिरों की
प्राचीन तेजस्वी अखंड ज्योति
वह सूरीनामी उपासकों की आंखों में
उतरता है साधना की शक्ति बनकर

सूर्य
सूरीनामी मस्जिदों की मीनारों से
उतर जाता है
हर पहर की अजान में
अजान से कुरान में
कुरान से लफ्ज में
इबारत से इंसान में
इंसानियत बनकर

सूर्य
सूरीनामी गिरजाघरों के भीतर पहुंचता है
प्रार्थना के शब्दों में
प्रकाश बनकर
घड़ी के घंटों में
सुनाई देता है
उजास का स्वर ढलकर

सूर्य
सूरीनामी भक्तजनों के
नन्हे घरौंदों में
आस्था का प्रतिरूप है
बिना भेदभाव के
मानवता के समर्थन में निःशब्द
मौन ही उसका स्वर
आस्था ही उसकी वाणी
भक्ति ही प्रेरणा का पावन प्रसाद।

दिल में चुभते हैं बर्छियाँ बनकर
याद आते हैं हिचकियाँ बनकर
जो जवानी में मस्त काट दिए
उड़ गए दिन वो तितलियाँ बनकर।

–ज्ञानेन्द्र साज़

कौन कहता है

– **चाँद हदियाबादी** (डेनमार्क)

कौन कहता है लबो रुखसार की बातें न हों
सुर्खियों की बात हो अख़बार की बातें न हों

दुश्मनों का जो रवैया है ये उन पे छोड़ दो
दोस्तों में तो कभी इंकार की बातें न हों

एक हो तुम पाँव हैं दो कश्तियों में किसलिए
इक तरफ हो जाओ तो बेकार की बातें न हों

सब जमाने से न कह दें कान की कच्ची हैं ये
घर की दीवारों में अब अगयार की बातें न हों

क्यों जमाने को खबर हो जानेमन! ये जान लो
प्यार की बातों में अब तकरार की बातें न हों

'चाँद' हरदम गर्दिशे अय्याम में चलता रहा
आज इसके सामने रफ्तार की बातें न हों।

ज़िन्दगी में तीर या तलवार से,
ज़िन्दगी में जीत से या हार से,
माँग कर या छीनकर मिलता नहीं,
प्यार मिलता है तो केवल प्यार से।

–रमेश प्रसून

ज़िंदगी अहसास का नाम है

– डॉ. अंजना संधीर

याद आते हैं
गर्मियों में उड़ते हुए रेत के कण
हवा चलते ही अचानक उड़कर, पड़ते थे आँख में
और कस के बंद हो जाती थीं
अपने आप आँखें
पहुँच जाते थे हाथ अपने आप आँखों पर
धूल से आँखों को बचाने के लिए
कभी पड़ जाता था कोई कण
तो चुभने लगता था आँख में, बहने लगता था पानी
हो जाती थी लाल आँखें मसलने से
कभी फूँक मार, कभी कपड़े को अँगुली से लगा देखता था कोई
खोल कर आँखें
करता था चेष्टा आँख में पड़े कणों को बाहर निकालने की
लेकिन यहाँ
जब सूखी बर्फ के कण
उड़ते हैं सफेद ढेरों से
चमकती धूप में, सर्दी की चिलचिलाती लहर के साथ
और पड़ते हैं आँख में
तो आँख क्षणभर के लिए बंद हो जाती हैं
ठीक वैसे ही अपने आप
मगर...मगर किसी ठंडक का अहसास
भर देते हैं आँख में
चुभते नहीं हैं ये कण
हिमपात की समाप्ति पर रुई के ढेरों या नमक के मैदानों में
बदल जाने और जम कर बर्फ बनने से पहले
उड़ती है रेत की तरह जो बर्फ
पड़ती है कपड़ों पर, आँखों में
तब हाथ तो उठते हैं
आँखों को बचाने, बंद भी होती हैं आँखें अपने आप
पड़ भी जाते हैं बर्फ के कण
तो ठंडक देकर बन जाते हैं पानी
आँखें तो आँखें होती हैं

उन्हें रेत भी चुभती है
बर्फ के कण भी चुभते हैं क्षण भर के लिए
हो जाती हैं कस कर बंद
तब याद आते हैं
रेत के कणों के साथ जुड़े
अपने वतन के
कितने ही स्पर्श
जो भर देते हैं अहसास की आग
इस ठंडे देश में
जिंदा रहने के लिए
जिंदगी अहसास का ही तो नाम है!

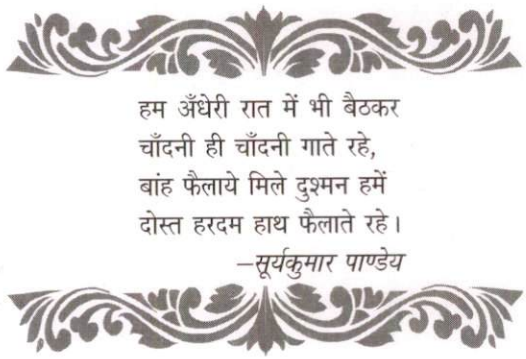

हम अँधेरी रात में भी बैठकर
चाँदनी ही चाँदनी गाते रहे,
बांह फैलाये मिले दुश्मन हमें
दोस्त हरदम हाथ फैलाते रहे।

–सूर्यकुमार पाण्डेय

निवेदन

■ **आप मेरे ई मेल-आई डी** kavi**sunil**jogi@gmail.com **पर विज्ञापन या रचनाएं भेजकर पत्रिका की निरंतरता में अपना योगदान दे सकते हैं।**

■ **समीक्षा के लिए अपनी सद्यःप्रकाशित पुस्तक की दो प्रतियां हमें भेज सकते हैं।**

■ **यदि 'पारस-पखान' आपको पसंद है, तो उसके नियमित सदस्य बनिए। स्वयं पढ़कर और दूसरों को भी इसका सदस्य बनाकर आप हमारे अभियान में सहभागी बन सकते हैं। कम-से-कम तीन से पांच वर्ष हेतु सदस्य बनने के लिए संपादकीय कार्यालय में अपनी धनराशि प्रेषित करें।**

खुशी

– शलभ श्रीवास्तव

जो खुशी खोज रहा है उसे खुशी मिल नहीं सकती
क्योंकि खुशी खोजने से नहीं मिलती
खुशी है परछाईं की तरह
जिसकी ओर दौड़ो तो आगे भागती है
और जिससे दूर भागो तो पीछा करती है

खुशी है तितली की तरह
जिसे पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाओ तो उड़ जायेगी
और शान्त रहो तो तुम्हारे सिर पर बैठ जायेगी

खुशी है जल में प्रतिबिम्ब की तरह
पाने के लिए हाथ बढ़ाओगे
तो छूते ही टूट जायेगा

खुशी ढूंढ़ता आदमी है
मरुस्थल में मृग की तरह
या दीपक पर पतंगे की तरह
खोजोगे तो खो जाओगे
जब लगेगा कि पा लिया
तो पाओगे कि खो दिया

प्रयास से मिलते हैं परिणाम
और प्रसन्नता मिलती है सहज अनायास।

ग़मज़दा आँखों का पानी एक है
और ज़ख़्मों की निशानी एक है
हम व्यथाओं की कथा किससे कहें
आपकी, मेरी कहानी एक है।

–देवमणि पाण्डेय

पारस-पखान का सफ़रनामा

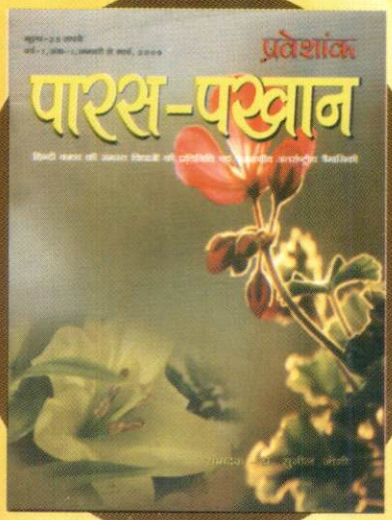

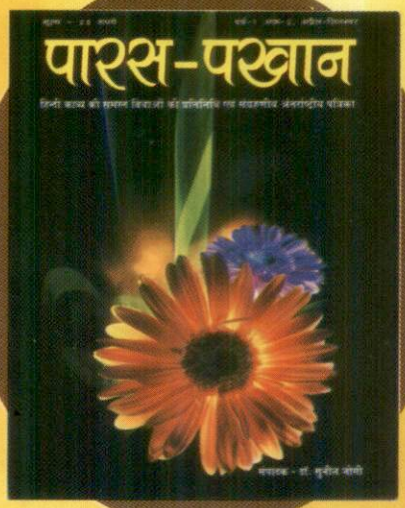

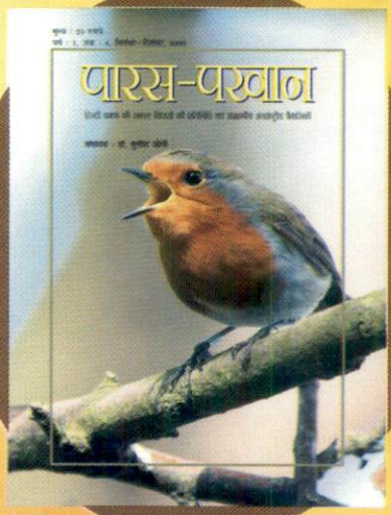

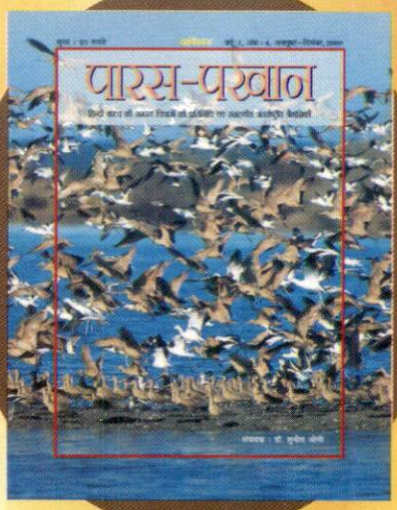

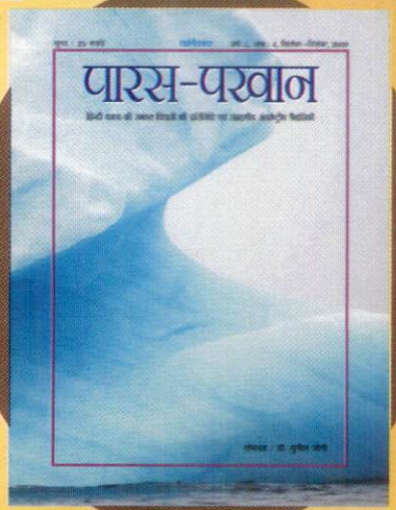

प्रसून प्रतिष्ठान के लिए **डॉ. सुनील जोगी** द्वारा संपादित एवं
डॉ. अनिल कुमार द्वारा सी-49, बटलर पैलेस कॉलोनी, जॉपलिंग रोड, लखनऊ से प्रकाशित।

पं. पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

(11/07/1932 से 23/01/2008)

विनम्र नमन

बाबू जी की स्मृतियों को मेरा शत्–शत् वन्दन है
इस 'पारस–पखान' का अर्पित, शब्द–शब्द का चन्दन है।